P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking
Vol-II * Issue-VII* December- 2015

ओमप्रकाश वाल्मीकि के काव्य में दलित वर्ग का चित्रण

पिन्टू रावल
शोध छात्र,
हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय,
रोहतक, हरियाणा

सारांश

ओमप्रकाश वाल्मीकि के काव्य में दलित वर्ग का संजीव चित्रण है। उनके रचना संसार ने निश्चय ही दलित समाज को मुखरता दी है। उनकी कविताएं समाज को एक नवीन, क्रुर, पीड़ादायक यथार्थ से परिचित कराती है। हिन्दी पट्टी में दलित साहित्य को स्थापित करने का श्रेय ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को जाता है। उन्होंने हमेशा अपनी पीड़ा व शोषण की अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम् से बेबाकी से समाज के समक्ष रखी। वे हमेशा दलित साहित्य को सौन्दर्य, प्रेम, समता, स्वतंत्रता, बंधुता और लोकतांत्रिक मूल्यों के रूप में देखते थे। उनकी कविताओं ने दलितों की चुप्पी तोड़ी। उनका लेखन सदैव दलित–पिछड़े–वंचित समाज को प्रेम, बंधुता, करूणा, अस्मिता, न्याय और सामाजिक प्रतिनिधित्व के पक्ष मे खड़ा रहने के लिए प्रेरित करता रहेगा। अटूट विश्वास है कि उनकी कविताएँ भावी पीढ़ियों के लिए ऐसा दस्तावेज़ साबित होंगी, जो उनमें न केवल चेतना का संचार करेगा बल्कि जीवन में आने वाले संघर्षों के विषय में पूर्व में उन्हें सचेत करेगी।

मुख्य शब्द : कविता, दलित, पीड़ित, शोषण, संघर्ष।

प्रस्तावना

ओमप्रकाश वाल्मीकि के चार काव्य–संग्रह प्रकाशित हैं–'सदियों का संताप', 'बस्स! बहुत हो चुका', 'अब और नही' और 'शब्द झूठ नही बोलते'। दलित कविता के मूल में मानववाद है। सबसे पहले हम दलित–वर्ग किसे कहते है। यह जानते हैं।

हिन्दी कोश में दलित वर्ग का अर्थ दिया है–

''समाज का वह वर्ग जो सबसे नीचा माना गया हो या दुखी और दरिद्र हो और जिसे उच्च वर्ग के लोग उठने न देते हों, जैसे भारत की छोटी या अछूत मानी जानेवाली जातियों का वर्ग। (डिप्रेस्ड क्लास)''[1]

दलित कविता के सन्दर्भ में वाल्मीकि जी का मानना है ''दलित समाज को दलित कविता ने मुखर दिया है। उसके भीतर जीवन के प्रति एहसास पैदा किया है। हजारों साल से मूक बने नरकीय जीवन को भागते हुए, जीवन के अर्थ ही भूल चुके थे। दलित कविता ने उनके भीतर चेतना का विस्फोट किया है। जो दलित कविता की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।''[2]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में दलित वर्ग का चित्रण–

इनकी कविताओं में मानवतावादी दृष्टिकोण इस प्रकार प्रकट होता है–

> ''वह दिन कब आयेगा जब बामनी नहीं जनेगी बामन चमारी
> नहीं जनेगी चमार भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी। तब नहीं
> चुभेंगे जातीय हीनता के दंश। नही मारा जायेगा तपस्वी
> शंबूक नहीं कटेगा अंगूठा एकलव्य का कर्ण होगा नायक।''[3]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का जीवन संघर्षपूर्ण होने के साथ–साथ अति पीड़ादायक भी था। वह जीने का मतलब बखूबी समझते थें। वे जानते थे कि जब एक व्यक्ति को जिन्दा रहने के लिए अनिवार्य चीजों का भी अभाव होता है तब मानवता का हनन होता है। गरीब आदमी कुछ और नहीं चाहता, उसे मात्र जिन्दा रहने के लिए हवा–पानी–खुराक की जरूरत होती है और जब वह भी नहीं मिलता तब ऐसा लगता है कि मानव को हमारी व्यवस्था नकार रही ह।

सम्मान से जीवन व्यतीत करना सभी का अधिकार है। जीने के हक को मांगने के बाद भी नहीं मिलने की पीड़ा शब्दों में कुछ ऐसे व्यक्त हुई है–

''कभी नहीं मांगी बलिश्त भर जगह नहीं मांगा आधा राज भी मांगा है सिर्फ न्याय जीने का हक थोड़ा–सा आकाश थोड़ा–सा पीने लायक पानी थोड़ा–सा सुख थोड़ा–सा चैन थोड़ी–सी धूप थोड़ी–सी हवा थोड़ी–सी रोशनी थोड़ी–सी किताबें थोड़ा–सा बचपन थोड़ा–सा अपनापन जब–जब भी कुछ माँगा वे गोलबंद होकर टूट पड़े।''[4]

उन्होंने कविताओं के माध्यम से आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था के प्रति खुला विरोध किया। अपने पूर्वजों द्वारा भोगे गये दुःख–पीड़ा की दयनीय स्थिति को अपने शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। दलितों को समाज में किसी भी प्रकार का अधिकार नही था। स्वर्ण समाज दलितों से केवल अपने घरों और खेतों में काम करवाया जाता था, जिसके बदले उन्हें भरपेट खाना भी नही मिलता था। परन्तु आज दलित समाज जाग्रत हो रहा है और इन यातनाओं के प्रति खुलकर संघर्ष भी कर रहा है। इसी संघर्ष को वाल्मीकि जी अपनी कविता 'तनी मुट्ठियां' में कुछ इस प्रकार व्यक्त करते है–

''मेरी पीढ़ी सदियों के अभिशाप को कंधों पर लादे गांव से/शहर तक आयी है खड़ी देख रही है/चौराहे परमशाल लिये जाते जुलूस को मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर खोद लिया है संघर्ष जहाँ आंसुओं का सैलाब नहीं विद्रोह की चिंगारी फूटगी जलती झोंपड़ी से उठते धुएं में तनी मुट्ठियां तुम्हारे तहखानों में नया इतिहास रचेगी।''[5]

''दलित कविता का सृजन कल्पनालोक से नहीं हुआ है बल्कि यह सामाजिक यथार्थ की अनुभूति से उपजी हुई कविताएँ हैं। अनुभूति एक–दो दिन की नहीं है बल्कि सदियों की पीड़ा और दमन का संसार दलित कविताओं की विषय–वस्तु है। शोषण और अपमान का दर्द ओमप्रकाश वाल्मीकि की काव्य–संवेदना का अहम पहलू है–

हजारों वर्ष का अंधेरा छिपा बैठा है मेरी साँसों में काँपता है दिये की लौ–सा और तब्दील हो जाता है कविता में । (किष्किंधा)''[6]

अपनी कविता ' रूंधे हुए शब्द' में वाल्मीकि जी ने जो बिम्ब बनाया है उससे हिन्दू संस्कृति के प्रति दलितों की घृणा और विरोध की भावना बलवती होती प्रतीत हो रही है–

''मुर्दा–संस्कृति की लाश पर मंडराती चील जश्न मानएगी जिसके पंखो के साये में संस्कृति का तकिया बनाकर शिकारगाह में अधलेटा आदमखोर निकाल रहा है दाँत में फंसे माँस के रेशे नुकीले खंजर से।''[7]

'शायद आप जानते हों' हिन्दी दलित साहित्य आन्दोलन के विकास क्रम की ऐतिहासिक कविता है। 26 जुलाई 1992 के हिन्दी दैनिक नवभारत टाइम्स में छपी यह कविता दलित काव्य चेतना के उन्मेष और उन्नयन के प्रतीक के रूप में रेखांकित की जाती रही है।

चूहडे या डोम की आत्मा ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है मैं नहीं जानता शायद आप जानते हों ''[8]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'शायद आप जानते हों' , 'कभी सोचा है', 'तब तुम क्या करोगें', 'पंडित का चेहरा' आदि कविताओं में धार्मिक अत्याचारों के प्रति सटीक विरोध व्यक्त किया गया है।

अपनी एक अन्य कविता में वाल्मीकि जी कहते है–

''यह कैसा लोकतंत्र है भाई? जहाँ चुनाव, नौकरी, इज्जत, योग्यता, शिक्षा सब जाति तंत्र तय करता है''[9]

सरकार द्वारा दलित–गरीब–पिछड़ों हेतु चलायी गयी योजनाओं में उनके लिए प्रावधान इतना ही रखते हैं कि ऊँट के मुँह में जीरा। इस स्थिति में गरीब के हाथ में क्या आएगा। वास्तव में यह स्थिति लोकतंत्र पर एक कलंक समान है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविताओं में समस्त दलित वर्ग की पीड़ा की अभिव्यक्ति है। उनकी कविता में देश, जाति, धर्म, समाज, राजनीति, आर्थिक, जातिगत भेदभाव, मानवीय संवेदनशीलता, प्रेम आदि विषयों को अभिव्यक्ति मिली है। दलित साहित्य के सन्दर्भ में 'स्वानुभूति' दोनों विषय अलग बहस का मुद्दा है। इन्होंने इन दोनों शब्दों में व्याप्त पीड़ा को अपनी कविता में कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है–

''मैं देख रहा हूँ वह सब जिसे देखना जुर्म है फिर भी करता हूँ गुस्ताखी चाहो तो मुझे भी मार डालो वैसे ही जैसे मार डाला एक प्यासे को जिसने कोशिश की थी एक अंजुली जल पीने की उस तालाब का पानी जिसे पी सकते हैं कुत्त–बिल्ली गायां–भैंसे नहीं पी सकता एक दलित दलित होना अपराध है उनके लिए जिन्हें गर्व है संस्कृति पर वह उतना ही बड़ा सच है जितना उसे नकारते है एक साजिश है/जो तब्दील हो रही है श्याह रंग में जिसे अंधेरा कहकर आँख मूँद लेना काफी नही है''[10]

दारूण गरीबी की पीड़ा को ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपनी कविता 'मुट्ठी भर चावल' में इस प्रकार व्यक्त करते है–

''बस्तियों से खदेड़े गये ओ, मेरे पुरखों तुम चुप रहे उन रातों में जब तुम्हे प्रेम करना था आलिंगन में बांधकर अपनी पत्नियों को। तुम तलाशते रहे मुट्ठीभर चावल सपने गिरवी रखकर।''[11]

वाल्मीकि जी के पहले काव्य संग्रह 'सदियों का संताप' की पहली कविता 'ठाकुर का कुआँ' दलित साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी कि हिन्दी दलित काव्य जगत में कवि वाल्मीकि जी की प्रतिष्ठा इसी कविता से हुई।

''चूल्हा मिट्टी का मिट्टी तालाब की तालाब ठाकुर का। कुआ ठाकुर का पानी ठाकुर का खेत–खलियान ठाकुर के गली–मुहल्ले ठाकुर के फिर अपना क्या? गाँव? शहर? देश?''[12]

हम सभी स्वतंत्र भारत में सांस ले रहे हैं। लेकिन जब भी दलित समाज अपने पुराने दुर्दिनों को विस्मृत कर सामान्य जीवन जीने का प्रयास करता है और अन्यों (सवर्णों) के साथ मिलकर रहना चाहता है तो यह बात सवर्णों को न जाने क्यों अखरती है। क्योंकि उनके

लिए तो आज भी दलित वर्णव्यवस्था के सबसे निचले स्थान पर मौजूद है। इन विपरीत स्थितियों के बाद भी दलित समाज जातिवाद से प्राप्त यातनाओं से संघर्ष करते हुए विजय प्राप्त करना चाहता है। इसी चाहत को कवि वाल्मीकि कुछ इस प्रकार व्यक्त करते है–

''न जाने तुम किस मिट्टी से बने हो भूलने नहीं
देते बिखेर देते हो हर बार दहकते अंगारे मेरी
प्रेम डगर पर जहाँ मैंने अक्सर की है कोशिश
बंजर धरती पर हरियाली उगाने की।''[13]

इस प्रकार सवर्णों को यह कदापि बर्दाश्त नहीं है कि जो क्षेत्र दलितों के लिए निषेध है, वे उन क्षेत्रों में अपना हस्तेक्षप/प्रवेश करें। जब भी दलितों द्वारा ऐसा प्रयास किया जाता है, तो उन्हें असंख्य यातनाओं का सहना पड़ता है। वाल्मीकि जी यह बहुत अच्छे से जानते थे कि दलितों को उच्च क्षेत्रों में प्रवेश बड़े संघर्षों के बाद मिलेगा। 'एक और युद्ध' कविता में वे कहते है–

''जब–जब भी तुम कोशिश करते हो आदमी
बनने की वे चौकन्ने होकर लग जाते है तैयारी
में एक और युद्ध की सीधे खड़े होकर आसमान
की ओर ताकना उन्हें गवारा नहीं वें नहीं चाहते
तुम वह सब करो जो किया था निषेध तुम्हारे
लिए उनके पुरखों ने''[14]

वाल्मीकि जी अपनी प्रारम्भिक रचनाओं से ही दलित अस्मिता की पहचान का प्रश्न खड़ा करते आये हैं। कविता के माध्यम् से मानवोय मूल्यों को स्थापित करना उनका प्रमुख ध्येय रहा है। वे कहते है–

''लोहा, लंगड़, गारा–सीमेंट, ईट–पत्थर सभी पर
है स्पर्श हमारा लगे है जो घरों में आपके फिर
भी बना दिया आपने हमें अछूत और अन्त्यज
भंगी डोम–चमार माँग–पासी और महार''[15]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी जानते थे कि जातिगत पीड़ा से मुक्ति संघर्ष से प्राप्त हो सकती है, चुप रहकर नहीं। दलित समाज की चुप्पी उनके लिए खतरनाक साबित हो सकती है–

''जितना रहोगे चुप मारे जाओगे बेदर्दी से उतना
ही उनके हाथों में होंगे तमंचे, बंदूक, लाठी, डंडे,
हथगोले साथ होगी पुलिस, सेना, शक्ति और
तुम निहत्थे मारे जाओगे बचकर भागने से पहले
ही तुम्हारी चुप्पी ही हो जायेगी खड़ी तुम्हारा
रास्ता रोककर''[16]

इसी कविता में आगे चुप्पी तोड़ने की जरूरत को बताते हुए लिखते है–

''तुम्हारी चुप्पी टूटेगी तो बनेगी दस्तावेज़ जो
लिखोगे डरी, सहमी हवाओं के सीने पर, उनके
लिए जिन्हें अभी जन्म लेना है वे गर्वित होंगे
बड़े– बूढ़ों से सुनकर तुम्हारी कहानियां''[17]

निष्कर्ष

अतः वाल्मीकि जी की रचना संसार के फलस्वरूप ही दलितों में साहित्यिक चेतना का विकास हुआ। वाल्मीकि जी के समस्त साहित्य में विशेषकर कविताओं में जो इनका आत्मसंघर्ष दिखायी देता है वह आज प्रतिष्ठित हो गया है। इनकी कविताओं में व्याप्त व्यापक संवेदना ने बरबस ही पाठकों को अपना मुरीद बना लिया है। इनकी कविताओं में बड़ी गहराई से दलित वर्ग का चित्रण किया गया है।

संदर्भ सूची

1. प्रामाणिक हिन्दी कोश–सं आचार्य रामचन्द्र वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संशोधित संस्करण 1996, पुर्नमुद्रण 1997, पृ0 स0 383।
2. दलित साहित्यः अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ–ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ0 स0 8।
3. बस्स! बहुत हो चुका– ओमप्रकाश वाल्मीकि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ0 स0 103।
4. वही, पृ0 स0 61।
5. सदियों का संताप–ओमप्रकाश वाल्मीकि, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2008, पृ0 स0 30।
6. प्रतिनिधि कविताएँ ओमप्रकाश वाल्मीकि–चयन एवं सम्पादन डॉ0 रामचन्द्र, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण 2012, भूमिका पृ0 स0 8।
7. बस्स! बहुत हो चुका–ओमप्रकाश वाल्मीकि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ0 स0 19।
8. प्रतिनिधि कविताएँ ओमप्रकाश वाल्मीकि–चयन एवं सम्पादन डॉ0 रामचन्द्र, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रोब्यूटर्स, दिल्लो, संस्करण 2012, भूमिका पृ0 स0 9।
9. शब्द झूठ नहीं बोलते–ओमप्रकाश वाल्मीकि, अनामिका पब्लिशर्स प्रा0 लिमिटेड, नई दिल्ली, 2012, भूमिका पृ0 स0 33।
10. हिन्दी कविता में दलित चेतनाः एक अनुशीलन, डॉ0 जंयती लाल माकडिया, आकाश पब्लिशर्स, गाजियाबाद, 2009, पृ0 स0 157, 158।
11. बस्स ! बहुत हो चुका–ओमप्रकाश वाल्मीकि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ0 स0 14, 15।
12. सदियों का संताप–ओमप्रकाश वाल्मीकि, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2008, पृ0 स0 13।
13. शब्द झूठ नहीं बोलते–ओमप्रकाश वाल्मीकि, अनामिका पब्लिशर्स प्रा0 लिमिटेड, नई दिल्ली, 2012, भूमिका पृ0 स0 102।
14. प्रतिनिधि कविताएँ ओमप्रकाश वाल्मीकि–चयन एवं सम्पादन डॉ0 रामचन्द्र, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण 2012, भूमिका पृ0 स0 84।
15. अब और नहीं– ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ0 स0 92, 93।
16. वही, पृ0 स0 97।
17. वही, पृ0 स0 98।